वेयणासामित्तविहाणाणुयोगद्दारं

वेयणासामित्तविहाणे त्ति ।। १ ।।

मंदमेहावीणमंतेवासीणमहियारसंभालणट्ठमिदं सुत्तं परूविदं । जं जेण कम्मं बद्धं तस्स[1] वेयणाए सो चेव सामी होदि त्ति विणोवदेसेण णज्जदे । तम्हा वेयणासामित्तविहाणे त्ति अणुओगद्दारं णाढवेदव्वमिदि[2] ? जदि जदो उप्पण्णो तत्थेव चिट्ठेज्ज कम्मक्खंधो तो[3] सो चेव सामी होज्ज । ण च एवं, कम्माणमेगादो उप्पत्तीए अभावादो । तं जहा- ण ताव जीवादो चेव कम्माणमुप्पत्ती, कम्मविरहिदसिद्धेहिंतो वि कम्मुप्पत्तिप्पसंगा । णाजीवादो[4] चेव, जीववदिरित्तकालपोग्गलाकासेहिंतो वि तदुप्पत्तिप्पसंगादो । [5] णासमवेदजी-वाजीवेहिंतो चेव समुप्पज्जदि, सिद्धजीवपोग्गलेहिंतो वि कम्मुप्पत्तिप्पसंगादो । ण च संजुत्तेहिंतो[6] चेव तदुप्पत्ती, संजुत्तजीव-पोग्गलेहिंतो वि कम्मुप्पत्तिप्पसंगादो ।

....

अब वेदनास्वामित्वविधान प्रकृत है ।। १ ।।

मन्दबुद्धि शिष्योंको अधिकारका स्मरण करानेके लिये यह सूत्र कहा गया है ।

शंका - जिस जीवके द्वारा जो कर्म बांधा गया है वह उक्त कर्मकी वेदनाका स्वामी है, यह बिना उपदेशके ही जाना जाता है । अत एव वेदनास्वामित्वविधान अनुयोगद्वारको प्रारंभ नहीं करना चाहिये ?

समाधान - कर्मस्कन्ध जिससे उत्पन्न हुआ है वहाँ ही यदि वह स्थित रहे तो वही स्वामी हो सकता है । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, कर्मोंकी उत्पत्ति किसी एकसे नहीं है । इसीको स्पष्ट करते है - यदि केवल जीवसे ही कर्मोंकी उत्पत्ति स्वीकार की जाय तो वह सम्भव नहीं है, क्योंकि, इस प्रकारसे कर्मरहित सिद्धोंसे भी कर्मोंकी उत्पत्तिका प्रसंग आ सकता है । एकमात्र अजीवसे भी कर्मोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि, ऐसा होनेपर जीवसे भिन्न काल, पुद्गल एवं आकाशसे भी कर्मोंकी उत्पत्तिका प्रसंग अनिवार्य होगा । असमवेत (समवाय रहित, जीव व अजीव दोनोंसे भी कर्मोंकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर (समवाय रहित) सिद्ध जीव और पुद्गलसे भी कर्मोंकी उत्पत्तिका प्रसंग आता है। इस प्रसंगके निवारणार्थ यदि संयुक्त जीव व अजीवसे ही कर्मोंकी उत्पत्ति स्वीकार की जाती है तो वह भी नहीं बन सकती, क्योंकि, ऐसा स्वीकार करनेपर संयुक्त जीव और पुद्गलसे भी उनकी उत्पत्तिका प्रसंग आता है ।

....

(१) आ-ताप्रत्योः 'तिस्से' इति पाठः । (२) अ-आप्रत्योः 'णादवेदव्वमिदि' इति पाठः ।
(३) प्रतिषु 'तदो' इति पाठः । (४) ताप्रतौ 'णो (अ) जीवादो' इति पाठः ।
(५) मप्रतिपाठोयम् । अ-आ-ताप्रतिषु 'ण समवेद' इति पाठः । (६) ताप्रतौ 'संजुतेहिंतो', इति पाठः ।

ण समवेदजीवाजीवेहिंतो वि तदुप्पत्ती, अजोगिस्स वि कम्मबंधप्पसंगादो । तम्हा मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगजणणक्खमपोग्गलदव्वाणि जीवो च कम्मबंधस्स कारणमिदि ट्ठिदं । सो च जीव- पोग्गलाणं बंधो पवाहसरूवेण आदिविरहियो, अण्णहा अमुत्त-मुत्ताणं जीवपोग्गलाणं बंधाणुववत्तीदो । बंधवत्तिं पडुच्च सादि-संतो, अण्णहा एगम्हि जीवे उप्पण्णदेवादिपज्जायाणमविणासप्पसंगादो । तम्हा दोहिंतो[1] तीहिं चदुहि वा उप्पज्जिय जीवम्मि एगीभावेण ट्ठिदवेयणा तत्थ एगस्स चेव होदि, अण्णस्स ण होदि त्ति ण वोत्तुं सक्किज्जदे । एवं जादसंदेहस्स अंतेवासिस्स मदि [2]वाउलविणासणट्ठं वेयणासामित्त-विहाणमाढवेदव्व[3] मिदि ।

णेगम-ववहाराणं णाणावरणीयवेयणा सिया जीवस्स वा ।। २ ।।

एत्थ वा सद्दा सव्वे समुच्चयट्ठे दट्ठव्वा । सिया सद्दा दोण्णि-एक्को किरियाए वाययो, अवरो णइवादियो, तत्थ कस्सेदं गहणं ? णइवादियो घेत्तव्वो, तस्स अणेयंते वुत्तिदंसणादो । सव्वहाणियमपरिहारेण सो सव्वत्थ परूवओ, पमाणाणुसारित्तादो । उत्तं च-

....

इस आपत्तिको टालनेके लिये यदि समवेत (समवाय प्राप्त) जीव व अजीवसे उनकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं तो यह भी उचित नहीं है, क्योंकि, वैसा माननेपर (कर्मसमवेत) आयोगकेवलीके भी कर्मबन्धका प्रसंग अवश्यम्भावी है । इस कारण मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगको उत्पन्न करनेमें समर्थ पुद्गल द्रव्य और जीव कर्मबन्धके कारण हैं, यह सिध्द होता है । वह जीव और पुद्गलका बन्ध भी प्रवाह स्वरूपसे आदि विरहित अर्थात् अनादि है, क्योंकि, इसके बिना क्रमशः अमूर्त और मूर्त जीव व पुद्गलका बन्ध बन नहीं सकता । बन्धविशेषकी अपेक्षा वह बन्ध सादि व सान्त है, क्योंकि, इसके विना एक जीवमें उत्पन्न देवादिक पर्यायोंके अविनश्वर होनेका प्रसंग आता है । इस कारण दो, तीन अथवा चारसे उत्पन्न होकर जीवमें एक स्वरूपसे स्थित वेदना उनमेंसे एकके ही होती है, अन्यके नहीं होती, ऐसा नहीं कहा जा सकता है । इस प्रकार सन्देहको प्राप्त शिष्यकी बुध्दिव्याकुलताको नष्ट करनेके लिये वेदनास्वामित्व विधानको प्रारम्भ करना योग्य है ।

नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् जीवके होती है ।। २ ।।

यहाँ सूत्रोंमें प्रयुक्त सब वा शब्दोंको समुच्चय अर्थमें समझना चाहिये । स्यात् शब्द दो हैं - एक क्रियावाचक और दूसरा अनेकान्त वाचक । उनमें यहाँ किसका ग्रहण है ? यहाँ अनेकान्त वाचक स्यात् शब्दको ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, उसके अनेकान्तमें वृत्ति देखी जाती है । उक्त स्यात् शब्द 'सर्वथा' नियमको छोडकर सर्वत्र प्ररूपणा करनेवाला है, क्योंकि, वह प्रमाणका अनुसरण करता है । कहा भी है -

....

(१) ताप्रतौ 'दोहिं (तो)', इति पाठः । (२) अप्रतौ 'वाउस', आप्रतौ 'वाओअ' इति पाठः ।
(३) अ-आप्रत्योः 'मदवेदव्व' इति पाठः ।

सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः[१] ।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम्[२] ।। २ ।।

ततः स्याज्जीवस्य वेदना । तं जहा-- अणंताणंतविस्सासुवचयसहिदकम्मपोग्गलक्खंधो सिया जीवो, जीवादो पुधभावेण तदणुवलंभादो । ण च अभेदे संते एगजोगक्खेमदा णत्थि त्ति वोत्तुं जुत्तं, अण्णत्थ तहाणुवलंभादो । एवंविहविवक्खाए सिया जीवस्स वेयणा त्ति सिद्धं ।

सिया णोजीवस्स वा ।। ३ ।।

णोजीवो णाम अणंताणंतविस्सासुवचएहि उवचिदकम्मपोग्गलक्खंधो पाणधारणाभावादो णाण-दंसणाभावादो वा । तत्थतणजीवो वि सिया[३] णोजीवो, तत्तो पुधभूदस्स तस्स अणुवलंभादो । तदो[४] सिया णोजीवस्स वेयणा । कधमभिण्णे छट्ठीणिद्देसो ? ण, खइरस्स खंभो त्ति अभेदे वि छट्ठीणिद्देसुवलंभादो । एदाणि दो वि सुत्ताणि संगहियणेगमस्स वि जोजेदव्वाणि, बहूणं पि जीव-णोजीवाणं जादिदुवारेण एयत्तुववत्तीदो ।

सिया जीवाणं वा ।। ४ ।।

....

हे अरजिन ! आपके न्यायमें 'सर्वथा' नियमको छोडकर यथादृष्ट वस्तुकी अपेक्षा रखनेवाला 'स्यात्' शब्द पाया जाता है । वह आत्मविद्वेषी अर्थात् अपने आपका अहित करनेवाले अन्यके यहाँ नहीं पाया जाता है ।। १ ।।

इस कारण कथंचित् जीवके वेदना होती है । वह इस प्रकार – अनन्तानन्त विस्रसोपचय सहित कर्मपुद्गलस्कन्ध कथंचित् जीव है, क्योंकि, वह जीवसे पृथक् नहीं पाया जाता । अभेद होनेपर एक योग-क्षेमता (अभीष्ट वस्तुका लाभ व संरक्षण) नहीं रहेगी, ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता । इस प्रकारकी विवक्षासे कथंचित् जीवके वेदना होती है, यह सिद्ध है ।

कथंचित् वह नोजीवके होती है ।। ३ ।।

अनन्तानन्त विस्रसोपचयोंसे उपचयको प्राप्त कर्म-पुद्गलस्कन्ध प्राणधारण अथवा ज्ञानदर्शनसे रहित होनेके कारण नोजीव कहलाता है । उससे सम्बन्ध रखनेवाला जीव भी कथंचित् नोजीव है, क्योंकि, वह उसके पृथग्भूत नहीं पाया जाता है । इस कारण कथंचित् नोजीवके वेदना होती है ।

शंका – अभेदमें पष्ठी विभक्तिका निर्देश कैसे किया ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, 'खैरका खंभा' यहाँ अभेदमें षष्ठीका निर्देश पाया जाता है ।

इन दोनों सूत्रोंको, संगृहीत नैगम नयके भी जोडना चाहिये, क्योंकि, बहुत भी जीव और नोजीवोंमें जातिकी अपेक्षा एकता पायी जाती है ।

उक्त वेदना कथंचित् बहुत जीवोंके होती है ।। ४ ।।

....

(१) प्रतिषु 'मवेक्षकः' इति पाठः । (२) बृहत्स्व १०२ । (३) अ-आप्रत्योः 'सया' इति पाठः ।
(३) अ-ताप्रत्योः 'तदा' आप्रतौ 'तद' इति पाठः।

जीवा एग-दु-ति-चदु-पंचिंदियभेदेण वा छक्कायभेदेण वा देसादिभेदेण वा अणेयविहा । णिच्चेयण-मुत्तपोग्गलखंधसमवाएण [१]भट्ठसगसरूवस्स कधं जीवत्तं जुज्जदे ? ण, अविणट्ठणाण दंसणाणमुवलंभेण जीवत्थित्तसिध्दीदो । ण तत्थ पोग्गलक्खंधो वि अत्थि, पहाणीकयजीवभावादो । ण च जीवे पोग्गलप्पवेसो बुद्धिकओ चेव, परमत्थेण वि तत्तो तेसिमभेदुवलंभादो । एवंविहअप्पणाए णाणावरणीयवेयणा सिया जीवाणं होदि । कधमेक्किस्से वेयणाए भूओ सामिणो ? ण, अरहंताणं पूजा इच्चत्थ बहूणं पि एक्किस्से पूजाए सामित्तुवलंभादो ।

सिया णोजीवाणं वा ।। ५ ।।

सरीरागारेण ट्ठिदकम्म-णोकम्मक्खंधाणि णोजीवा, णिच्चेयणत्तादो । तत्थ ट्ठिदजीवा वि णोजीवा, तेसिं तत्तो भेदाभावादो । ते च णोजीवा अणेगा-अणेग-संठाण-देस-काल वण्ण-गंधादिभेदप्पणाए । तेसिं णोजीवाणं च णाणावरणीयवेया होदि ।

सिया जीवस्स च णोजीवस्स च ।। ६ ।।

....

एक, दो, तीन, चार और पांच इन्द्रियोंके भेदसे, अथवा छह कायोंके भेदसे, अथवा देशादिक भेदसे जीव अनेक प्रकारके हैं ।

शंका – चेतनारहित मूर्त पुद्गलस्कन्धोंके साथ समवाय होनेके कारण अपने स्वरूप, (चैतन्य व अमूर्तत्व) से रहित हुए जीवके जीवत्व स्वीकार करना कैसे युक्तियुक्त है?

समाधान – नहीं, क्योंकि, विनाशको नहीं प्राप्त हुए ज्ञान दर्शनके पाये जानेसे उसमें जीवत्वका अस्तित्व सिद्ध है । वस्तुतः उसमें पुद्गलस्कन्ध भी नहीं है, क्योंकि, यहाँ जीवभावकी प्रधानता की गई है । दूसरे, जीवमें पुद्गलस्कन्धोंका प्रवेश बुद्धिपूर्वक नहीं किया गया है, क्योंकि, यथार्थतः भी उससे उनका अभेद पाया जाता है ।

इस प्रकारकी विवक्षासे ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् बहुत जीवोंके होती है ।

शंका – एक वेदनाके बहुतसे स्वामी कैसे हो सकते हैं ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, 'अरहन्तोंकी पूजा' यहाँ बहुतोंके भी एक पूजाका स्वामित्व पाया जाता है ।

कथंचित् वह बहुत नोजीवोंके होती है ।। ५ ।।

शरीराकारसे स्थित कर्म व नोकर्म स्वरूप स्कंधोंको नोजीव कहा जाता है, क्योंकि, वे चैतन्य-भावसे रहित हैं । उनमें स्थित जीव भी नोजीव हैं, क्योंकि, उनका उनसे भेद नहीं है । उक्त नोजीव अनेक संस्थान, देश, काल, वर्ण व गन्ध आदिके भेदकी विवक्षासे अनेक हैं । उन नोजीवोंके ज्ञानावरणीय वेदना होती है ।

कथंचित् जीव और नोजीव दोनोंके होती है ।। ६ ।।

....

(१) अप्रतौ 'अट्ठ', इति पाठः ।

जीवस्स वि वेयणा भवदि, तेण विणा पोग्गलादो चेव तदणुवलंभादो । णोजीवस्स वि भवदि, णोकम्मपोग्गलक्खंधेहि विणा जीवादो चेव तदणुवलंभादो । एवंविहणए जीवस्स च णोजीवस्स च णाणावरणीयवेयणा होदि ।

सिया जीवस्स च णोजीवाणं च ।। ७ ।।

जीवस्स एयत्तं जदा जादिदुवारेण गहिदं तदा णोजीवबहुत्तं देस-संठाण-सरीरारंभयपोग्गलभेदेण घेत्तव्वं । जदा जादीए विणा [1]जीववत्तिगयमेगत्तमप्पियं होदि तदा कम्मइयक्खंधाणमणंताणमणेगसंठाणाण[2] मणेगदेसट्ठियाणमेगजीवविसयाणं भेदेण णोजीवबहुत्तं वत्तव्वं । एवंविहाए अप्पणाए जीवस्स च णोजीवाणं च वेयणा होदि ।

सिया जीवाणं च णोजीवस्स च ।। ८ ।।

जदा[3] जादिदुवारेण णोजीवस्स एयत्तं विवक्खियं तदा[4] काइंदिय-संठाण-देसादिभेदेण जीवाणं बहुत्तं घेत्तव्वं । जदा[5] णोजीवस्स वत्तिदुवारेण एयत्तमप्पियं तदा पदेसादिभेदेण जीवबहुत्तं घेत्तव्वं । एवंविहविवक्खाए सिया जीवाणं च णोजीवस्स च वेयणा होदि ।

....

जीवके भी वेदना होती है, क्योंकि, जीवके विना एकमात्र पुद्‌गल से ही वह नहीं पायी जाती । उक्त वेदना नोजीवके भी होती है, क्योंकि, नोकर्मरूप पुद्‌गलस्कन्धोंके विना एक मात्र जीवसे ही वह नहीं पायी जाती है । इस प्रकारके नयमें ज्ञानावरणीयकी वेदना जीवके भी होती है और नोजीवके भी होती है ।

वह कथंचित् जीवके और नोजीवोंके होती है ।। ७ ।।

जब जातिकी अपेक्षासे जीवकी एकता ग्रहण की गई हो तब देश, संस्थान और शरीरके आरम्भक पुद्‌गलस्कन्धोंके भेदसे नोजीवोंके बहुत्वको ग्रहण करना चाहिये । जब जातिके बिना जीवव्यक्तिगत एकताकी प्रधानता होती है तब अनेक संस्थानसे युक्त व अनेक देशोंमें स्थित एक जीव विषयक अनंतानंत कार्मण स्कन्धोंके भेदसे नोजीवोंके बहुत्वको कहना चाहिये । इस प्रकारकी विवक्षासे जीवके और नोजीवोंके भी उक्त वेदना होती है ।

वह कथंचित् जीवोंके और नोजीवके होती है ।। ८ ।।

जब जाति द्वारा नोजीवकी एकता विवक्षित हो तब काय, इन्द्रिय, संस्थान और देश आदिके भेदसे जीवोंके बहुत्वको ग्रहण करना चाहिये । जब व्यक्ति द्वारा नोजीवकी एकता विवक्षित हो तब प्रदेशादिके भेदसे जीवोंके बहुत्वको ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकारकी विवक्षासे कथंचित् जीवोंके और नोजीवके भी वेदना होती है ।

....

(१) ताप्रतौ 'जीववड्ढि (त्ति) गय' इति पाठः । (२) अ-आप्रत्योः 'संठाण', ताप्रतौ 'संठा(णा)ण' इति पाठः।
(३) अ-आप्रत्योः 'जधा' इति पाठः । (४) अ-आप्रत्योः 'तधा' इति पाठः ।
(५) अ-आप्रत्योः 'जधा' इति पाठः ।

सिया जीवाणं च णोजीवाणं च ।। ९ ।।

जदा जीव-णोजीवाणं च अवयवविसयमणवयवविसयं च बहुत्तं विवक्खियं तदा जीवाणं च णोजीवाणं च वेयणा ।

एवं सत्तण्णं कम्माणं ।। १० ।।

जहा णाणावरणीयवेयणा परूविदा तहा सत्तण्णं कम्माणं परूवेदव्वा, विसेसाभावादो।

संगहणयस्स णाणावरणी[1] यवेयणा जीवस्स वा ।। ११ ।।

जो जस्स फलमणुभवदि तं तस्स होदि त्ति सयललोअप्पसिद्धी ववहारो । ण च कम्मफलं कम्माणि चेव भुंजंति, अप्पाणम्मि किरियाविरोहादो । णिच्चेयणत्तणेण णाणदंसण-विरहिदेसु पोग्गलक्खंघेसु णाणावरणीयवावारस्स वइफलप्पसंगादो च ण णोजीवस्स, किंतु जीवस्सेव । ण च जीवदव्ववदिरित्तो णोजीवो होदि, जीवेण सह एयत्तमावण्णस्स णोजीवत्तविरोहादो । एदं सुद्धसंगहणयवयणं, जीवाणं तेहि[2] सह णोजीवाणं च एयत्तब्भुवगमादो । एत्थ सिया सद्दो किण्ण पउत्तो ? ण एस दोसो, पयारंतराभावादो । जदि सुद्धसंगहणए वेयणाए सामिस्स अण्णो वि पयारो अत्थि तो सिया सद्दो वुच्चदे ।

....

कथंचित् वह जीवोंके और नोजीवोंके होती है ।। ९ ।।

जब जीवों और नोजीवोंके अवयवविषयक और अनवयवविषयक बहुत्वकी विवक्षा हो तब जीवोंके और नोजीवोंके वेदना होती है ।

इसी प्रकार शेष सात कर्मोंके सम्बन्धमें कहना चाहिये ।। १० ।।

जैसे ज्ञानावरणीय कर्म सम्बन्धी वेदनाकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार शेष सात कर्मोंकी वेदनाकी प्ररूपणा करनी चाहिये, क्योंकि, उसमें कुछ विशेषता नहीं है ।

संग्रह नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना जीवके होती है ।। ११ ।।

जो जिसके फलका अनुभव करता है वह उसका स्वामी होता है, यह व्यवहार सकल जनोंमें प्रसिद्ध है । परन्तु कर्मके फलको कर्मही तो भोगते नहीं हैं, क्योंकि, अपने आपमें क्रियाका विरोध हैं, तथा अचेतन होनेसे ज्ञान-दर्शनसे रहित पुद्‌गलस्कन्धोंमें ज्ञानावरणीयके व्यापारकी विफलताका प्रसंग होनेसे भी उसकी वेदना नोजीवके नहीं होती, किन्तु जीवके ही होती है । दूसरी बात यह है कि जीव द्रव्यसे भिन्न नोजीव है ही नहीं, क्योंकि, जीवके साथ एकताको प्राप्त पुद्‌गलस्कन्धके नोजीव होनेका विरोध है । यह कथन शुद्ध संग्रह नयकी अपेक्षा है, क्योंकि, जीवोंकी और उनके साथ नोजीवोंकी एकता स्वीकार की गई है ।

शंका - यहाँ सूत्रमें 'स्यात्' शब्द प्रयोग क्यों नहीं किया गया है ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यहाँ दूसरा कोई प्रकार नहीं है । यदि शुद्ध संग्रह नयकी अपेक्षा वेदनाके स्वामीका कोई दूसरा भी प्रकार होता तो 'स्यात्' शब्दका प्रयोग

....

(१) अ-आप्रत्योः 'णाणावरणवेयणा', इति पाठः । (२) ताप्रतौ 'जीवाणं ताहि' इति पाठः ।

ण च अत्थि तम्हा[1] सो ण पउत्तो त्ति । संपहि असुद्धसंगहणयविसए सामित्तपरू-वणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि –

जीवाणं वा ॥ १२ ॥

[2]संगहियणोजीव-जीवबहुत्तब्भुवगमादो । [3]एदमसुद्धसंगहणयवयणं । सेसं जहा सुद्धसंगहस्स वुत्तं तहा वत्तव्वं, [4]विसेसाभावादो ।

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ १३ ॥

जहा सुद्धासुद्धसंगहणए अस्सिदूण णाणावरणीयवेयणाए सामित्तपरूवणा कदा तहा सत्तण्णं कम्माणं वेयणाए पुध पुध सामित्तपरूवणा कायव्वा, विसेसाभावादो ।

सद्दुजुसुदाणं णाणावरणीययवेयणा जीवस्स ॥ १४ ॥

किमट्ठं जीव-वेयणाणं सद्दुसुजुदा बहुवयणं णेच्छंति ? ण एस दोसो, बहुत्ता-भावादो । तं जहा-सव्वं पि वत्थु एगसंखाविसिट्ठं, अण्णहा तस्साभावप्पसंगादो । ण च एगत्तपडिग्गहिए वत्थुम्हि दुब्भावादीणं संभवो अत्थि, सौदुण्हाणं व तेसु सहाणवट्ठा-

....

करना योग्य था । परन्तु वह है नहीं, अतएव उसका प्रयोग नहीं किया गया है ।

अब अशुद्ध संग्रह नयके विषयमें स्वामित्वकी प्ररूपणा करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं –

अथवा जीवोंके होती है ॥ १२ ॥

कारण कि संग्रहकी अपेक्षा नोजीव और जीव बहुत स्वीकार किये गये हैं । यह अशुद्धसंग्रह नयकी अपेक्षा कथन है । शेष प्ररूपणा जैसे शुद्ध संग्रह नयका आश्रय करके की गई है वैसे ही करना चाहिये, क्योंकि, इसमें उससे कोई विशेषता नहीं है ।

इसी प्रकार शेष सात कर्मोंके विषयमें कथन करना चाहिये ॥ १३ ॥

जिस प्रकार शुद्ध और अशुद्ध संग्रह नयोंका आश्रय करके ज्ञानावरणीयकी वेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मोंकी वेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा पृथक्-पृथक् करनी चाहिये, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

शब्द और ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना जीवके होती है ॥ १४ ॥

शंका– शब्द और ऋजुसूत्र ये दोनों नय व जीव वेदनाके बहुवचनको क्यों नहीं स्वीकार करते हैं?

समाधान – यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यहाँ बहुत्वकी संभावना नहीं है । वह इस प्रकारसे – सभी वस्तु एक संख्यासे सहित है, क्योंकि, इसके विना उसके अभावका प्रसंग आता है । एकत्वको स्वीकार करनेवाली वस्तुमें द्वित्वादिककी संभावना भी नहीं है, क्योंकि, उनमें शीत

....

(१) ताप्रतौ 'तहा' इति पाठः । (२) मप्रतौ 'संगहअ-', इति पाठः।

(३) अ-आप्रत्योः 'एदमसुद्धं' इति पाठः । (४) अप्रतौ 'अविसेसादो', आप्रतौ त्रुटितोऽत्र पाठः ।

णलक्खणविरोहदंसणादो । ण च एगत्ताविसिट्ठं वत्थु अत्थि जेण अणेगत्तस्स[1] तदाहारो होज्ज । एक्कम्हि खंभम्मि मूलग्ग-मज्झभेएण अणेयत्तं दिस्सदि त्ति भणिदे ण[2], तत्थ एयत्तं मोत्तूण अणेयत्तस्स अणुवलंभादो । ण ताव थंभगयमणेयत्तं, तत्थ एयत्तुवलंभादो । ण मूलगयमग्गगयं मज्झगयं वा, तत्थ वि एयत्तं मोत्तूण अणेयत्ताणुवलंभादो । ण तिण्णमेगेगवत्थूणं समूहो अणेयत्तस्स आहारो, तव्वदिरेगेण तस्समूहाणुवलंभादो । तम्हा णत्थि बहुत्तं । तेणेव कारणेण ण चेत्थ[3] बहुवयणं पि । तम्हा सुद्दुजुसुदाणं णाणावरणीयवेयणा जीवस्से त्ति भणिदं ।

एवं सत्तण्णं कम्माणं ।। १५ ।।

जहा णाणावरणीयस्स परूविदं तहा सत्तण्णं कम्माणं वेयणासामित्तं परूवेदव्वं विसेसाभावादो ।

एवं वेयणासामित्तविहाणं समत्तमणुयोगद्दारं ।

....

व उष्णके समान सहानवस्थान रूप विरोध देखा जाता है । इसके अतिरिक्त एकत्वसे रहित वस्तु है भी नहीं जिससे कि वह अनेकत्वका आधार हो सके ।

शंका – एक खम्भेमें मूल, अग्र एवं मध्यके भेदसे अनेकता देखी जाती है ?

समाधान – ऐसा आशंका होनेपर उत्तर देते हैं कि 'नहीं', क्योंकि, उसमें एकत्वको छोडकर अनेकत्व पाया नहीं जाता । कारण कि स्तम्भमें तो अनेकत्वकी सम्भावना है नहीं, क्योंकि, उसमें एकता पायी जाती है । मूलगत, अग्रगत अथवा मध्यगत अनेकता भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, उनमें भी एकत्वको छोडकर अनेकता नहीं पायी जाती है । यदि कहा जाय कि तीन एक एक वस्तुओंका समूह अनेकताका आधार है, सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उससे भिन्न उनका समूह पाया नहीं जाता । इस कारण इन नयोंकी अपेक्षा बहुत्व सम्भव नहीं, है । इसीलिये यहाँ बहुवचन भी नहीं है । अतएव शब्द और ऋजुसूत्र नयोंकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना जीवके होती है, ऐसा कहा गया है ।

इसी प्रकार इन दोनों नयोंकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंकी वेदनाके स्वामित्वका कथन करना चाहिये ।। १५ ।।

जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकी वेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मोंकी वेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा करनी चाहिये, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार वेदनास्वामित्वविधान अनुयोग द्वार समाप्त हुआ ।

....

(१) प्रतिषु 'अणोगंतस्स', इति पाठः । (२) ताप्रतौ 'भणिदे ण' इति पाठः ।
(३) अ-ताप्रत्योः 'ण च अत्थि' इति पाठः ।